इकाई 11 समुदाय संबंधी फीचर : विषय का चयन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 समुदाय के लिए लेखन का अभिप्राय

11.3 समुदाय के लिए लेखन का महत्व

11.4 सामाजिक पृष्ठभूमि

11.5 समुदाय संबंधी लेखन के विभिन्न क्षेत्र

- 11.5.1 आदिवासी समुदाय
- 11.5.2 हाशिये पर लोग
- 11.5.3 नई सामुदायिक चेतना

11.6 विषय पर लेखन के प्रकार

- 11.6.1 आदिवासी समुदायों की जीवन–शैली
- 11.6.2 लोक कलाएं और कलाकार
- 11.6.3 समुदायों में बदलाव
- 11.6.4 सामुदायिक संघर्ष की कथा
- 11.6.5 पहचान बनाने की जद्दोजहद
- 11.6.6 आत्मनिर्भरता और सहयोग

11.7 खत्म होते समुदाय

11.8 विषय का चयन

- 11.8.1 रुचि और विशेषज्ञता
- 11.8.2 लेखन का उद्देश्य और प्रासंगिकता
- 11.8.3 प्रकाशन की प्रकृति

11.9 सामग्री का संकलन

- 11.9.1 विषय पर शोध
- 11.9.2 तथ्यों का संकलन
- 11.9.3 साक्षात्कार
- 11.9.4 फोटो और अन्य सामग्री

11.10 सामग्री का संयोजन और संपादन

- 11.10.1 आरंभ
- 11.10.2 मध्य
- 11.10.3 अंत और शीर्षक

11.11 भाषा शैली

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

11.12 सारांश

11.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप विभिन्न समुदायों को ध्यान में रखकर लिखे जाने वाले फीचर के बारे में व्यावहारिक ज्ञान हासिल कर सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समुदाय के बारे में लिखे जाने वाले फीचर की विषयवस्तु और सामाजिक पृष्ठभूमि की समझ हासिल कर सकेंगी/सकेंगे और समुदाय पर फीचर लेखन के महत्व और पत्रकारिता में उसकी जरूरतों को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- यह जान सकेंगी/सकेंगे कि समुदाय को केंद्र में रखकर किन क्षेत्रों में फीचर लेखन किया जा सकता है;
- फीचर लेखन के लिए विषय के चयन और उसके लिए आवश्यक तैयारी के बारे में व्यावहारिक ज्ञान हासिल कर सकेंगी/सकेंगे, तथा
- फीचर के आरंभ, मध्य और अंत की तकनीकी जानकारी तथा इस तरह के फीचर में इस्तेमाल होने वाली भाषा–शैली की जानकारी हासिल करते हुए समुदाय पर एक बेहतर फीचर लेखन की क्षमता का विकास कर सकेंगी/सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

समाचार पत्रों के लिए फीचर लेखन से संबंधित व्यवहारमूलक पाठ्यक्रम की इस इकाई में हम आपको समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर के बारे में जानकारी देंगे। इसमें हम आपको बताएंगे कि कैसे भारतीय समाज में हाशिये पर रहने वाले समुदायों में अपनी अस्मिता और पहचान को लेकर जागरूकता आई है। कैसे वे मुख्य धारा में शामिल होने की जद्दोजहद में हैं। हम उस सामाजिक पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे जिनसे इन समुदायों को ज्यादा आत्मीय तरीके से और गहराई से समझा जा सके। इनकी समझ हमें एक अच्छे फीचर की विषय वस्तु तैयार करने में मददगार साबित होगी। हम विस्तार से बदलती सामाजिक पृष्ठभूमि तथा भारत के आर्थिक–सामाजिक परिदृश्य में इन समुदायों को समझने का प्रयास करेंगे। हम यह देखेंगे कि समुदायों से जुड़े वे कौन से प्रमुख मुद्दे हैं, जिनके आधार पर फीचर तैयार करने के लिए दिशा–संकेत मिल सकते हैं। इस तरह के फीचर में प्रयोग होने वाली भाषा–शैली और उसकी बुनावट पर अलग से विचार किया जाएगा। इससे आपकी इन वर्गों पर लिखे जाने वाले फीचर की प्रस्तुति को बेहतर बनाने में मदद मिलेगी।

11.2 समुदाय के लिए लेखन का अभिप्राय

समाजशास्त्र में समुदाय को ऐसे सदस्यों के समूह के तौर पर परिभाषित किया गया है, जहां समूह के सदस्य सिर्फ किसी विशेष लाभ के चलते नहीं, बल्कि जीवन की कुछ बुनियादी स्थितियों के चलते एक साथ रहते हैं। सामान्य तौर पर माना जाता है कि एक समुदाय का हिस्सा बने व्यक्ति के जीवन की संपूर्ण बुनियादी आवश्यकताएं उसी समुदाय में पूरी हो जाती हैं, मगर आधुनिक समाज में कोई समुदाय अपने चारों

तरफ ऐसी चारदीवारी नहीं खींच सकता जो व्यक्ति को शेष दुनिया से काट कर रखे। आधुनिक समाज में समुदाय के भीतर कई समुदाय अपना अस्तित्व बनाकर रखते हैं। शहर एक क्षेत्र का हिस्सा हो सकता है, वह क्षेत्र देश का वृहत्तर वैश्विक समुदाय का हिस्सा होता है।

आरएम मैकाइवर और चार्ल्स एम. पेज ने अपनी किताब 'सोसाइटीः एन इंट्रोडक्टरी ऐनेलिसस' में समुदाय के लिए स्थानीयता और सामूहिक संवेदना को बुनियादी तत्व के बतौर स्वीकार किया है। उनका मानना है कि कोई भी समुदाय अपनी स्थानीयता अस्तित्व ग्रहण करता है, भले वह बंजारा यानि घुमंतू समाज ही क्यों न हो?। एक खास इलाके और समूह भावना को बल देने वाले रीति–रिवाजों और आदतों से बंधा होता है। दूसरी तरफ, आज मौजूदा संदर्भों में पूरी तरह से सामुदायिक संवेदनाओं के विभिन्न तत्वों को विश्लेषण भी करना होगा। एक खास किस्म की सामुदायिक भावना से जुड़े लोग दुनिया भर में बिखरे हो सकते हैं वहीं, एक ही शहर में तमाम भाषाओं, जाति, धर्म और नस्लों के लोग मौजूद रहते हुए भी किसी समुदाय का हिस्सा हो सकते हैं।

समुदाय को सामान्य अर्थों में परिभाषित करने के बाद अब हम यह देखते हैं पत्रकारिता में इस पर केंद्रित फीचर लेखन की क्या संभावनाएं विकसित हुई हैं। हाल के वर्षों में आई सूचना क्रांति की सामुदायिक लेखन को मुख्यधारा में लाने में बड़ी भूमिका रही है। टेक्नोलॉजी के विकास, सूचना क्रांति और विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने उन सामाजिक इकाइयों को अपनी बात मुख्यधारा तक पहुंचाने का मौका दिया जो अभी तक हाशिये पर थे। वहीं मीडिया ने भी अपनी खोजपरक शैली में हाशिये पर खड़े लोगों को स्वर दिया और मुख्य धारा में शामिल होने की उनकी जद्दोजहद में मददगार साबित हुआ। आजादी के बाद भारतीय पत्रकारिता की बड़ी उपलब्धि सामुदायिक चेतना को स्वर और बल देना है। देखते–देखते दूरदराज के गांव, जनजातीय समुदाय, समाज में हाशिये पर पड़े समुदायों के लोग इसी पत्रकारिता की बदौलत अपनी मौजूदगी दर्ज कराने लगे हैं। उदाहरण देखें –

''वैज्ञानिकों का मानना है कि जहां गर्बियांग बसा है वहां हजारों साल पहले एक झील थी। जाने–माने भूगर्भशास्त्री एवं हिमालयीय भूगर्भवेत्ता डा. खड्ग सिंह वल्दीया पिछले वर्ष इस गांव में गए थे। उनका कहना है कि यह गांव 50 से भी ज्यादा वर्षों से धंस रहा है जिसका कारण इसका एक पुराने समय में लुप्त हुई झील की नरम जमीन पर बसा होना है। इस जमीन को काली नदी की तेज धारा नीचे से लगातार काट रही है और इसका ऊपरी हिस्सा धंस रहा है। वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि ज्यादा आबादी का बोझ झेलते वक्त गांव के धंसने की रफ्तार भी ज्यादा थी और बड़ी तादाद में लोगों के पलायन के बाद से गांव का धंसना भी कम हो गया है।''

(पांव तले नहीं हैं जमीं, महेश पांडे, इंडिया टुडे, 8 अगस्त 2005)

11.3 समुदाय के लिए लेखन का महत्व

अघोषित तौर पर समुदाय के लिए लेखन पत्रकारिता का एक अहम हिस्सा बन चुका है। अंग्रेजी के मुकाबले हिन्दी पत्रकारिता में सामुदायिक चेतना पर कम काम नहीं हुआ है, पर इसे सुनियोजित तौर पर परिभाषित करने और सामने लाने की कोशिश नहीं की गई है। समुदाय के लिए फीचर लेखन एक बेहतर उद्देश्य को लेकर चलने

वाली पत्रकारिता का हिस्सा है। हैरत की बात है कि बीते सालों में व्यावसायीकरण का खासा दबाव होने के बावजूद पत्रकारिता ने अपनी इस खूबी को जीवित रखा है।

किसी विशेष समुदाय के अनूठेपन, हालात और संघर्ष को सामने लाने वाली रिपोर्टों तथा फीचरों की संख्या में इजाफा हुआ है। समुदाय के लिए लेखन की प्रकृति गंभीर होती है और इसके लिए गहन शोध और स्थितियों के सीधे आंकलन की जरूरत पड़ती है। समुदाय को केंद्र में रख कर तैयार फीचर देश के कोने–कोने में मौजूद विविधता से भरी लोक संस्कृति को सामने लाने में मदद करते हैं। तमाम जनजातियों और आदिवासी समूहों के संघर्षों और उनकी कठिनाइयों की तरफ सभ्य समाज का ध्यान आकर्षित किया है। हमारे समाज में हाशिये पर मौजूद तमाम वर्गों की उपेक्षा और दर्द को स्वर दिया है। इतना ही नहीं समुदाय के लिए लिखे जाने वाले फीचरों की मदद से ही हम मौजूदा समाज में मौजूद उन छोटी इकाइयों और उनके कामकाज को पहचान पाते हैं जो बिना किसी शोर–शराबे के खामोशी से अपने काम में लगे हैं। देखें उदाहरण –

''फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वाली रेशमा हबीब कहती हैं, 'मैं सांख्यिकी का अध्ययन कर रही हूँ' मुझे इस पर विश्वास ही नहीं होता। उसे जानने वाले दूसरे लोगों को भी विश्वास नहीं होता। बंगलूर के राजेंद्रनगर में पांच बच्चों वाले एक गरीब परिवार की 16 वर्षीय रेशमा ने वाकई लंबा सफर तय किया है। वह अपने परिवार के साथ एक झुग्गी बस्ती में रहती है। पिता दिल के मरीज हैं और मां घरेलू महिला हैं। परिवार में सिर्फ एक भाई काम करने वाला है, सो रेशमा के लिए स्कूली शिक्षा हासिल करना लगभग नामुमकिन था। लेकिन उसने 58 फीसदी अंकों के साथ 10वीं पास करके बागों के शहर के क्राइस्ट कॉलेज में प्री–यूनिवर्सिटी कोर्स (पीयूसी) में दाखिला ले लिया है। भविष्य की योजना, सफल कारोबार करना।

इसका ज्यादातर श्रेय कॉलेज के छात्र–छात्राओं को जाता है। कॉलेज में गठित समूह सेंटर फॉर सोशल ऐक्शन के स्वयंसेवियों ने रेशमा जैसे गरीब युवक–युवतियों के सशक्तीकरण को अपना मिशन बनाया है। वे न केवल झुग्गी बस्तियों और दूसरे गरीब इलाकों में अभावग्रस्त विद्यार्थियों का पता लगाते हैं, बल्कि उनके लिए ट्यूटोरियल की भी व्यवस्था करते हैं, और सबसे बढ़कर, आधुनिक शिक्षा हासिल करने के लिए जरूरी पैसा भी मुहैया कराते हैं।''

(पढ़ो और पढ़ाओ भी, स्टीफन डेविड, इंडिया टुडे, 30 जुलाई 2003)

11.4 सामाजिक पृष्ठभूमि

समुदाय के लिए फीचर लेखन की सामाजिक पृष्ठभूमि दरअसल सूचना के इस्तेमाल से जुड़ी है। समाज के हाशिये पर सिमटे रहने वाले वर्गों को सूचना क्रांति की बदौलत ही अपनी मौजूदगी दर्ज करने का मौका मिला। सूचना और संचार माध्यमों से जुड़े लोगों ने भी समाज के इन अनदेखे कोनों में ताक–झांक शुरू की, जिसके सकारात्मक नतीजे सामने आए। आजादी के बाद भारत में हुए सामाजिक आंदोलनों में बड़ा परिवर्तन यह देखने को मिला कि छोटे समूह और समुदाय अपनी अस्मिता को लेकर सचेत होने लगे। अभी तक सामाजिक आंदोलन किसी बड़े आदर्श या अवधारणा को लेकर चलते थे और लोगों को उसे जुड़ने का आह्वान करते थे। यह परिवर्तन की वैश्विक लहर थी, जिससे भारतीय समाज भी अछूता न रहा और तमाम समुदायों ने

अपनी पहचान का संघर्ष आरंभ किया। हम समुदाय के लिए फीचर लेखन की मूल अवधारणा पर विचार करें तो परिवर्तन के इस बुनियादी पहलू को नजरअंदाज नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो समुदाय के लिए लिखे जाने वाले सारे लेखन के पीछे अस्मिता को पहचानने की यह कोशिश छिपी हुई है।

आदिवासी समुदायों का संघर्ष अंग्रेजों के जमाने से चल रहा था। वे सभ्य समाज के लिए 'अनोखे' और 'अजूबा' थे। उन पर अगर कुछ गंभीरता से काम हुआ तो वह भी पुस्तकालयों और पत्रिकाओं में कैद होकर रह गया। फिर मीडिया ने उनकी संस्कृति और संघर्ष को स्वर देना शुरू किया। इसमें मुख्यधारा की पत्रकारिता और जिसे हम वैकल्पिक मीडिया कहते हैं, उसका बराबर का योगदान रहा। समाज के दलितों और पिछड़ों का राजनीतिक–सामाजिक उभार तेजी से हो रहा था। गंभीर किस्म की पत्रकारिता ने समाज में दिखाई देने वाले इन परिवर्तनों की सतही व्याख्या करने की बजाय उनका गहराई से विश्लेषण किया। गंभीर पत्रकारिता में आदिवासी, दलित, पिछड़े और महिलाएं एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बनने लगे। दलित और स्त्री विमर्श जैसे पद बने। इसने मुख्यधारा की पत्रकारिता पर भी असर डाला और उसके नजरिये को परिपक्व किया।

11.5 समुदाय संबंधी लेखन के विभिन्न क्षेत्र

अब हम समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर के विषय–क्षेत्रों पर चर्चा करेंगे। समुदाय के लिए लिखे जाने वाले फीचर को मुख्य रूप से तीन शीर्षकों के अंतर्गत समेट सकते हैं। इन शीर्षकों के दायरे में हम मौजूदा समय में समुदाय को लेकर लिखे जा रहे लगभग हर प्रकार के फीचर को समेट सकते हैं। आइए, क्रमवार इन पर विचार करते हैं।

11.5.1 आदिवासी समुदाय

आदिवासी समुदाय हमारे देश का एक बहुत बड़ा और उपेक्षित हिस्सा है। आजादी मिलने के बावजूद देश के कई हिस्सों में आदिवासी गुलामों जैसा जीवन गुजार रहे हैं। आदिवासियों का अपने जंगल और जमीन से अटूट रिश्ता रहा है। जमीन पर अधिकार के लिए उन्होंने कड़े संघर्ष किए। जंगलों और पहाड़ों की ऊबड़–खाबड़ जमीनों को कड़ी मेहनत करके उसे रहने और खेती लायक बनाया। बाद के दौर में बने कानूनों ने उन्हें आहिस्ता–आहिस्ता वन क्षेत्रों और जमीनों से बेदखल करना शुरू कर दिया। बड़े पैमाने पर आदिवासी अपने इसी हक के लिए संघर्ष करते रहे हैं। कुछ बंजारा और घुमंतू किस्म के आदिवासी समुदाय अपराध की तरफ मुड़ गए तो बहुत से समुदाय अपराधी होने के शक में उत्पीड़ित हो रहे हैं। इनमें से बहुत से आदिवासी अपनी लोक कलाओं के सहारे जीवन–यापन करते थे, मगर यह कौशल भी अब सिमटता जा रहा है। कुल मिलाकर आदिवासियों को 'सभ्य समाज' से घृणा और उपेक्षा ही मिली है, उन्हें न तो मुख्यधारा में शामिल किया गया और न ही वे चाहकर भी ऐसा कर पाए। आज भी उन्हें दो वक्त की रोटी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। देखें उदाहरण –

''जिंदगी उनके लिए नर्क है। साठ साल के सुंदर हों या चौबीस साल का पप्पू इनकी सुबह शुरू होती है दो रोटियों की तलाश से और शाम भी इसी में ढल जाती है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से महज 52 किलोमीटर दूर बाराबंकी जिले के

बांसा में रहने वाले चकछिन्ने (पत्थर काटने वाले) जाति के लोग अनाज की जगह चूहा, लुखरी (लोमड़ी), वनबिलार खाकर जी रहे हैं।''

(आउटलुक, 18 अगस्त 2003 'चकछिन्ने' एक नई सुबह का इंतजार

योगेश मिश्र,)

11.5.2 हाशिये पर लोग

वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी ही नहीं, बल्कि हमारी मुख्यधारा का हिस्सा कहलाने वाले तमाम समुदाय ऐसे हैं, जो लंबे समय से हाशिये पर होने के कारण आज अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। चाहे वह कोई अल्पसंख्यक समुदाय हो, पीढ़ी–दर–पीढ़ी काम करने वाले हुनरमंद कारीगर हों, ग्रामीण इलाकों में रहने वाली स्त्रियां हों, शहरी आबादी में मौजूद दलित हों, उपेक्षा और हिकारत से देखे जाने वाले हिजड़े हों, रेलवे प्लेटफार्म, चौराहों और मलिन बस्तियों में भटकने वाले आवारा बच्चे हों या फिर वेश्याएं हों, मौजूदा पत्रकारिता और सामाजिक आंदोलनों ने इन सभी को देखने के परंपरागत नजरिए को बदला है। अभी तक उन्हें जिस उपेक्षा भरी निगाह से देखा जाता था, उसमें बदलाव आया है, दृष्टिकोण ज्यादा उदार और मानवीय हुआ है। यह फीचर लेखन का एक संभावनाशील और विस्तृत क्षेत्र है। इस वजह से ही इन तमाम उपेक्षित लोगों के मौजूदा हालात और उसके पीछे वजहों को एक बड़ी बहस का हिस्सा बनाने की कोशिश हुई है और उसमें काफी हद तक सफलता भी मिली है।

11.5.3 नई सामुदायिक चेतना

बीते सालों में समाज की मुख्यधारा में भी नई सामुदायिक चेतना का विकास देखने को मिला है। लोककलाओं के संरक्षण के प्रयास हुए हैं। छोटे–छोटे तमाम समूहों में जागरूकता आई है और उन्होंने मिलकर खुद को आत्मनिर्भर बनाने से लेकर विभिन्न सामाजिक योगदानों तक में अपनी जिम्मेदारी को अंजाम दिया हैं। ऐसे तमाम लोग हैं जिन्होंने सामुदायिक चेतना विकसित करने का काम किया है। बीते दो–तीन दशक छोटे स्तर पर किए प्रभावशाली प्रयासों के दौर कहे जा सकते हैं। देश के अलग–अलग इलाकों में चलने वाले तमाम आंदोलनों के सफल होने की बड़ी वजह सामुदायिक चेतना और उसकी धड़कन को पहचानना भी था। मीडिया का रुख भी इन आंदोलनों के प्रति सकारात्मक रहा है और इस रुख की वजह से ही इन आंदोलनों में लगे लाखों लोगों को बल मिला है। चाहे वह पहाड़ में शराब के खिलाफ महिलाओं का आंदोलन हो, हरे–भरे पेड़ों को काटे जाने के विरोध में चला 'चिपको आंदोलन' हो, पॉलीथीन के इस्तेमाल के खिलाफ स्कूली बच्चों की एकजुटता हो या फिर बड़े बांधों की वजह से होने वाले विस्थापन के खिलाफ संगठित होते जन–आंदोलन। यह नई सामुदायिक चेतना हमें महानगरों में छोटे पैमाने पर किए जा रहे कई प्रयासों में भी दिखाई देती है। यह एक व्यापक और निरंतर घटित होते रहने वाला क्षेत्र है, जहां फीचर लेखन की अपार संभावनाएं हैं।

11.6 विषय पर लेखन के प्रकार

हमने यह देखा कि समुदाय संबंधी लेखन को मुख्य तौर पर कितने क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में हम तमाम विषय तलाश सकते हैं और उन पर विशेषज्ञता हासिल करते हुए अच्छे फीचर लिख सकते हैं। समुदाय से संबधित इन

क्षेत्रों में फीचर लिखने के लिए विषय के विस्तार की संभावनाओं को भी टटोलना होगा। इन्हें सीधे–सीधे खांचे में नहीं बांटा जा सकता क्योंकि तेजी से आ रहे सामाजिक बदलाव के मद्देनजर इनमें हमेशा असीमित संभावनाएं रहेंगी। आगे हम इसी पर थोड़ा और विस्तार से विचार करेंगे और यह देखेंगे कि समुदाय पर कितने प्रकार के फीचर लिखे जा सकते हैं।

11.6.1 आदिवासी समुदायों की जीवन–शैली

आदिवासी समुदायों की जीवन शैली पर लंबे समय से फीचर लिखे जाते हैं। बदलते दौर को देखते हुए इस रुझान में कोई खास फर्क नहीं आया आदिवासी समुदायों का रहन–सहन समाज के लिए कुतूहल का विषय भी रहा है। अनोखी प्रथाएं, परम्पराएं, रीति–रिवाज और वेशभूषा हमेशा से लोगों की दिलचस्पी का केंद्र रहे हैं। आदिवासियों के रहन–सहन पर केंद्रित एक अच्छा फीचर उसे सिर्फ कौतुक या मनोरंजन का विषय बनने से बचाता है, बल्कि इसी बहाने वह पाठक का ध्यान इन समुदायों की केंद्रीय मानवीय स्थिति की तरफ ले जाता है। इस तरह के ब्योरे भले ही दिलचस्प हों, मगर हम उनसे जुड़कर सोचना आरंभ कर देते हैं। उत्तर भारत के थारुओं की जीवन शैली का चित्रण करता एक उदाहरण प्रस्तुत है :

''जन्माष्टमी पूजन के लिए घरों में दीवार पर बनने वाले चित्र थारूओं की आस्थाओं, मान्यताओं की झलक देते हैं। इसमें बंशी बजाते, कालिया नाग पर सवार कृष्ण की आकृतियों के साथ ही पेड़–पौधे, जंगली जानवर होते हैं तो पांडव के आसपास ही, बरमुंडवा भी देखने को मिलता है।

बरमुंडवा बारह मुखों वाली आकृति है, जो वास्तव में रावण है। दशानन के साथ दो और मुखों के जुड़ जाने के बारे में इन्हें कुछ मालूम नहीं। इसी चित्र में कुछ घरों में हनुमान जी की आकृति भी बना दी जाती है। राम और रावण में इनकी जबर्दस्त आस्था है और इन्हें वे अलग करके नहीं देखते। यही वजह है कि थारुओं की बस्ती 'एस्कॉन' के लोगों को वृदांवन में बैठकर भी अपनी ओर खींचती है। श्रावस्ती के रनियापुर में तो ईसाई मिशनरी के लोगों ने बाकयदा अभियान भी चलाया, मगर नाकामयाब रहे।''

(संस्कार अपनी जगह मगर फिल्मों का जबदस्त रंग है

थारुओं पर, प्रभात, अमर उजाला, 10 मार्च, 1998)

11.6.2 लोक कलाएं और कलाकार

भारतीय समाज में कला जीवन की सहज गति में घुली–मिली हुई है। पंरपरागत समुदायों में लोक कलाओं का सुंदर रूप देखने को मिलता है। ऐसे तमाम समुदाय हैं जो बहुत पहले से ही अपने खास हुनर की बदौलत ही जीवन–यापन करते आए है। बदलते वक्त, टेक्नोलॉजी और मशीनीकरण के चलते उनके हुनरमंद हाथों की कद्र घटने लगी। ऐसे लोग मजबूरी में अपनी पुश्तैनी कला छोड़कर दूसरे काम करने लगे। फीचर के माध्यम से इन समुदायों में छिपे हुनर को सामने लाने का प्रयास किया जा सकता है, मिटती हुई लोक कलाओं की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है और संरक्षण के लिए चल रहे प्रयासों को रेखांकित किया जा सकता है। उनके उदाहरण देखें –

''इस बीच ज्यादातर अनपढ़ हिन्दू–मुस्लिम बुनकरों ने खुद डिजाइन तैयार करना शुरू कर दिया। जोधपुर के आधा दर्जन गांवों में करीब तीन हजार बुनकर सालावास दरियां बनाने लगे। धीरे–धीरे उन्होंने अपना बाजार बना लिया। नौवीं तक पढ़े प्रजापति सरीखे कुछ बुनकर राजस्थानी पगड़ी पहनकर पर्यटकों को लुभाने लगे और अनंदा राम सरीखे कुछ बुनकरों के साथ गांव जाने लगे। रूपराज ने इस कारोबार की संभावनाओं को भांपकर 1984 में अपना हथकरघा लगा लिया था। आज उनके 18 हथकरघों में 50 बुनकर काम कर रहे हैं।''

(रंगीन सपनो की बुनावट, रोहित परिहार,

इंडिया टुडे, 24 नवंबर 2004)

11.6.3 समुदायों में बदलाव

वास्तविकता यह है कि परपंरागत समझे जाने वाले समुदाय भी परिवर्तन की लहर से अछूते नहीं रह गए हैं। यही वजह है कि अब आदिवासियों की जीवन शैली को महज दांतों तले उंगली दबाकर देखने की बजाय फीचर लेखक की निगाह उन बदलावों की तरफ भी जाती है, जो आदिवासी और सभ्य समाज की मुठभेड़ से उपजे हैं। इन परिवर्तनों से गहरे सामाजिक अर्थ निकलते हैं। समुदायों में तेजी से आ रहे इस परिवर्तन पर फीचर लेखन की व्यापक संभावनाएं हैं। यहां बस्तर के आदिवासियों पर लिखे एक फीचर के अंश को बतौर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा हैं, जिससे इस तरह के लेखन की अवधारणा और स्पष्ट होगी–

''बस्तर के नए बने जिले कांकेर के एक छोटे से कस्बे में आदिवासियों के एक शिविर में जब एक आदिवासी बाला ने पानी का गिलास बढ़ाया, तो मैंने शहरी आदतवश 'थैंक यू' कहा। जवाब में उसने खास अंग्रेजी अंदाज में 'वेलकम' कहा तो हमारा चौंकना लाजमी था। यहां जिस आदिवासी बाला का जिक्र है उसकी मां उस शिविर में अपने विशेष आदिवासी पहनावे के कारण अलग से ही पहचान में आ जाती थी। जब बोलने का मौका आया तो हालबी भाषा में उसने अपनी बात रखी, मगर उसकी पंद्रह–सोलह साल की लड़की इंदिरा बस्तर ने बताया कि वह मुंबई कहे जाने वाले जबलपुर के एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ती है। कांकेर, दंतेवाड़ा, धमतरी, जबलपुर आदि इलाकों में रहने वाले गोंड, मारिया, मुड़िया, हालबा, बैगा, धुरवा समुदायों के आदिवासियों की नई पीढ़ी इस बात की हामी है कि अंग्रेजी और कंप्यूटर का ज्ञान उनकी तरक्की का कारण हो सकता है। आप कांकेर जैसे छोटे शहर में निकल जाएं तो कम से कम दर्जन भर साइबर कैफे आपको दिख जाएंगे और उनमें आधी–आधी रात तक बैठने वाले छात्रनुमा लड़के भी।

बस्तर के आदिवासी इलाकों में सक्रिय आदिवासी समता मंच की कार्यकर्ता इंदू नेताम कहती हैं कि घर–घर पसरते टीवी के साम्राज्य ने आदिवासियों के अंदर भी उपभोक्ता वस्तुओं की लालसा पैदा कर दी है। जो आदिवासी समाज महज कुछ दशक पहले तक यह मानता रहा है कि जो मजा जंगल में घूमने में है। वह नौकरी–चाकरी करके पैसा कमाने में कहां है, वही आज जमीन बेच–बेच कर घर को उपभोक्ता सामान से भरने में लगा है।''

(गात हन हम धरती दाई के गुन रे, प्रभात रंजन,
जनसत्ता, 17 अप्रैल 2005)

11.6.4 सामुदायिक संघर्ष की कथा

समुदायों के संघर्ष की कथा भी फीचर का विषय बनती है। वे मुख्यधारा का हिस्सा न बन पाने की जद्दोजहद से गुजर रहे हैं। बदले वक्त ने उनकी भूमिका को अप्रासंगिक बना दिया है। भारतीय समाज में ऐसे तमाम समुदाय हैं जो बदलते वक्त से तालमेल न बिठा पाने के कारण हाशिये पर धकेल दिए गए हैं। वे अपनी आजीविका और समाज में खुद का अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष से जूझ रहे हैं। इनके सघर्ष को भी फीचर का विषय बनाया जा सकता है। एक उदाहरण देखें –

''सरकार की ओर से इन्हें जमीन का पट्टा तो हासिल हुआ है, लेकिन बीस साल गुजर गए, पट्टे जमीन की शक्ल भी इन्होंने नहीं देखी। जिले के सरकारी दस्तावेज पर नजर दौड़ाएं तो उनके नाम गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों में शामिल हैं और उनको राशन कार्ड भी जारी किए गए हैं। लेकिन हकीकत यह है कि इनके पास चावल और गेंहू खरीदने के लिए आना–पाई भी नहीं हैं। नई पीढ़ी के चकछिन्नों ने पैदल चलकर ही सही, बाराबंकी जिले तक अपनी जद बढ़ा ली है। शहर में आमद–रफ्त करने वाले चकछिन्ने थोड़े चतुर सुजान होने लगे हैं। एक लड़का अपनी चतुराई की कहानी सुनाते हुए कहता है, 'अनजान आदमी को बताते हैं कि उसके घर में विषखोपड़ा है। अगर कोई निकलवाने को तैयार हो जाता है तो पांच–दस रुपये हाथ लग जाते हैं। हम लोग अपने पासका विषखोपड़ा निकालकर दिखा देते हैं।''

('चकछिन्ने' एक नई सुबह का इंतजार, योगेश मिश्र,

आउटलुक, 18 अगस्त 2003)

11.6.5 पहचान बनाने की जद्दोजहद

समुदायों के साथ ही सामुदायिक चेतना के विकास की समझ भी फीचर के लिए एक उर्वर क्षेत्र है। सिर्फ दबी–कुचली हालत में रहने वाले लोगों के समुदाय ही नहीं, बल्कि जागरूक समुदाय भी संघर्षरत हैं। नई तकनीक से साक्षात्कार, शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के चलते इन समुदायों में अपनी पहचान बनाने की कोशिश होने लगी है। ये लोग समाज की मुख्यधारा का हिस्सा बनना चाहते हैं, मगर अपनी छवि को मिटाए बगैर। इनमें आदिवासी समुदायों से लेकर शहरी इलाकों में रोजगार के लिए बसे उपेक्षित लोग और ग्रामीण तक शामिल हैं। एक उदाहरण देखें :

''गांवों में मार्केटिंग की कामयाबी का प्रतीक बने शैंपू के सैशे आज यहां की हर दुकान में आपको टंगे मिल जाएंगे। हर हफ्ते यहां की परचून की दुकान से कोल्ड ड्रिंक की करीब 150 बोतलें बिक जाती हैं। ग्रामीण भारत तेजी से ठंडा गटकने लगा है। पिछले सात साल में गांवों में कार्बोनेटेड ड्रिंक्स की खपत में 65 फीसदी का इजाफा हुआ है। 1.64 करोड़ शहरी मध्यवर्गीय घरों के मुकाबले देश के ग्रामीण क्षेत्रों में मध्यवर्गीय घरों की तादाद 1.56 करोड़ है। यानी करीब उसी के बराबर। आदर्श नंगला उन्हीं घरों का एक आइना है–यहां कमोबेश हर घर में टेलीफोन, रसोई गैस सिलिंडर और मोटरसाइकिल हैं। हर सुबह आपको यहां चार अखबार और ब्रिटानिया ब्रेड मिल जाएगी।''

(धुंधली–सी रोशनी में, शारदा उगरा,

इंडिया टुडे, 22 अगस्त 2005)

11.6.6 आत्मनिर्भरता और सहयोग

यह जानना भी दिलचस्प होगा कि कैसे आत्मनिर्भरता और सहयोग की बदौलत समुदायों में नई चेतना का विकास हुआ है। समाज के तमाम छोटे समूहों में आई जागरूकता से परिवर्तन के नए आयाम सामने आए हैं। इन समुदायों ने अपने तरीके से खुद को आगे बढ़ाने की राह तलाश की है और आपसी सहयोग से खुद को, आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया है। अपने समुदाय में सालों से जड़ जमा चुकी कुरीतियों को खत्म करने का जिम्मा भी उठाया है। इन समुदायों में शहरी लोगों से लेकर गांवों में रहने वाले तक शामिल हैं। ये सामूहिक तौर किए गए प्रयास भी हो सकते हैं और एक समुदाय में आई चेतना के फलस्वरूप निजी स्तर पर की जाने वाली कोशिशें भी। उदाहरण देखें –

''देश के दूर–दराज कस्बों की लड़कियां कंप्यूटर या एमबीए प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने में जुट रही हैं। इन कस्बों से कई ऐसी लड़कियां दिल्ली तक आ गई हैं। हाल ही में बिहार के भागलपुर जिले के नौगछिया से एक मां अपनी तीन बेटियों को लेकर दिल्ली के कटवरिया सराय में आकर बस गई है। सिर्फ इसलिए कि उसकी तीनों बेटियां पढ़–लिखकर अपने पांवों पर खड़ी हो सकें। पिता केले की खेती करता है और अपनी बूढ़ी मां के साथ नौगछिया में ही रहता है। सबसे बड़ी लड़की बैंक में प्रोबेशनरी ऑफीसर बनने के लिए प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रही है। दूसरी कंप्यूटर में एमसीए कर रही है। तीसरी सरोज कहती है 'मैं किसी मल्टीनेशनल में काम करना चाहती हूं।' शादी के मामले में जात–पात के दकियानूसी विचार को पीछे छोड़ आया है यह परिवार। इन लड़कियों की मां कहती हैं, 'दिल्ली में ही अच्छे लड़कों से अपनी लड़कियों की शादी कर देंगी। किसी भी जाति के मिल जाएं।''

(हैं कसबे की पर छा गई, शैलेश कुमार झा,

आउटलुक, 24 नवंबर 2003)

11.7 खत्म होते समुदाय

कुछ समदाय ऐसे भी हैं जो वक्त की तेज रफ्तार में खत्म होते जा रहे हैं। अनचाहे तौर पर ही उनकी संस्कृति मिटती जा रही है क्योंकि उसे संभालने वाले उत्तराधिकारी मौजूद नहीं हैं। इन समुदायों को भी हम फीचर का विषय बना सकते हैं। इन पर लिखे जाने वाले फीचर में हम उस निर्मम अनिवार्यता की तरफ भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, जिसकी वजह से समाज में लंबे समय से बहता एक सोता अचानक सूखने की कगार पर पहुंच जाता हैं। इसमें उस समुदाय के लोगों का इंसानी जीवन संघर्ष भी शामिल होता है। इसी तरह के फीचर का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

''वे तारीखें 59 वर्षीया रूबी नामिया के जेहन में आज भी ताजा हैं जब उनकी माँ और तीन भाइयों ने इस्राइल में जा बसने की खातिर केरल को अलविदा कह दिया था। वे क्षण भले ही हृदयविदारक रहे हों, लेकिन रूबी, उनके कपड़ा व्यापारी पति अब्राहम और उनकी तीन बेटियों का लगाव संभावनाओं से भरे उस देश के मुकाबले देवभूमि के प्रति ज्यादा गहरा था। यूं तो नामिया परिवार को यहूदी होने पर गर्व है, मगर इससे भी ज्यादा गर्व उन्हें अपने मलयाली होने पर है और यह सब इस तथ्य के

बावजूद है कि अपनी तेजी से घटती आबादी के कारण समाज में परंपराओं को जिंदा रखने की जद्दोजहद में यहूदी समुदाय पिछड़ता जा रहा है।''

(जुदा न होंगे इस जमीन से, एमजी राधाकृष्णन

इंडिया टुडे, 21 जून 2004)

यहां हम थारुओं पर लिखा गया एक फीचर का अंश बतौर उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। इसमें आप देखेंगे कि कैसे एक समुदाय की गतिविधि के बहाने उसकी संस्कृति, जीवन संघर्ष और समाज में उनकी पहचान के संकट को एक साथ सामने लाया जा सकता है। इसके लेखक प्रभात ने बतौर शोधार्थी और छायाकार कई वर्षों तक थारुओं से जीवंत संपर्क बनाए रखा। अमर उजाला में प्रकाशित यह फीचर बाद में गोविंद वल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान से प्रकाशित उनकी पुस्तक में भी शामिल हुआ।

संस्कार अपनी जगह मगर फिल्मों का जबरदस्त रंग है थारुओं पर

''थारुओं की बारात है। डोली के आगे चलते बच्चे और युवक फिल्मी गानों की तर्ज पर ऐसे नाच रहे हैं कि एक–बारगी तो शहरी शोहदे भी शरमा जाएं। भरी हुई बंदूकों से फायर करती युवक मंडली खुद को 'वीडियो' के नायक जैसा ही महसूस करने लगती है। प्रधान के समधी के घर तो दूल्हे की डोली का इंतजार करती औरतें तब चक्कर में पड़ गई, जब दूल्हा जीप में सवार होकर दरवाजे पर पहुंच गया। यह सिर्फ बानगी है।

जनजातियों के आर्थिक उत्थान और विकास की सरकारी कोशिशें पूरी तरह सार्थक भले नहीं हुईं, मगर लोक जीवन में घालमेल की मौजूदा स्थिति के लिए उन्होंने उत्प्रेरक का काम जरूर किया। शहरी जीवन और इसके तौर–तरीकों से नावाकिफ थारू तराई के जंगलों में प्रकृति से सीखते हुए उसके बीच ही रहते आए हैं, पता नहीं कब से अपना समाज, जीवन जीने का अपना निराला ढंग, जंगलों और खेतों से दिन भर के खाने को जुटा लिया, तो फिर बेफिक्र होकर नाचने–गाने में मस्त। धीरे–धीरे कुदरती चीजें इंसान की न होकर सरकार की हो गई, तो जंगल भी सरकार की मिल्कियत हो गए। थारुओं की हदें बांध दी गई। इसके बदले में सरकार ने उन्हें जमीन, मकान और शिक्षा देकर उपकृत किया। सरकार और शहर की नजर लग गई। थारुओं का 'थारूपन' चुकने लगा हैं। अब वे निखालिस जाड़ (चावल से बनी शराब) के नशे से संतुष्ट नहीं हो पाते, उन्हें फिल्मों का नशा है, फिल्मी गानों का नशा हैं, नायक–नायिकाओं की अदाकारी की नकल का नशा है। थारुओं के गांव तक सड़कों के जरिए पहुंचे शहर ने उन्हें जितना दिया, उससे कहीं ज्यादा छीन लिया। शहर से लगातार संपर्क की वजह से वे अब बोउक (बेवकूफ) थोड़े ही रह गए, मगर दरअसल वे खुद क्या हो गए, उन्हें भी नहीं मालूम।

नेपाल से सटे उत्तर प्रदेश के पूरे तराई क्षेत्र के जंगलों में थारू रह रहे हैं। नैनीताल में किच्छा और खटीमा से लेकर पीलीभीत, खीरी, गोंडा, बहराइच और श्रावस्ती में थारुओं की बड़ी आबादी आबाद है। जंगल, जानवर और खेती के सिवाय उन्हें दुनिया की और चीजों से सरोकार नहीं था, इसलिए ये कबाइली जीवन के संस्कारों को जीते चले आए। शैतान से डरते, बीमारी से निजात को जड़ी–बूटियां खुद ही पहचान लेते, बुरी आत्माओं से बचने को गुरवा (गुनिया) की शरण में जाते और शिव को पूजकर आशीर्वाद लेते।

स्वभाव से शांत और सरल होने का ही नतीजा है कि बाहरी दुनिया से पहले साक्षात्कार में इनका सिर्फ शोषण हुआ–श्रम का शोषण, देह का शोषण, आर्थिक शोषण। हद तो यह है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में कई जगह अब भी कुछ ऐसे रिक्शेवाले है, जो थारुओं को ही अपने रिक्शे पर बैठाने की जुगत में रहते हैं। 'अस्पताल जाना हैं, किरावा केतना' के जवाब में रिक्शेवाला तय करता है, 'दू रुपया खंभा' और दस–बारह खंभे गिनाकर आसानी से बीस–बाईस रुपये की मजूरी कर लेता है, हालांकि अधिसंख्य अब रिक्शेवाले को बताने लगे हैं, 'नाहिं, कईसे, अब हम ओतना बउक त नांय हुई।''

(प्रभात, अमर उजाला, 10 मार्च 1998)

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1) आजादी के बाद भारत में आदिवासियों की स्थिति में कितना बदलाव आया है? वे किन दिक्कतों का सामना कर रहे हैं? उदाहरण सहित विवेचना करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) उदारीकरण के बाद ग्रामीण युवाओं के रहन–सहन और उनकी सोच में क्या परिवर्तन देखने को मिला है? संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) अपने शहर में रहने वाले किसी खास समुदाय के लोगों का पता करें। उनसे बातचीत के आधार पर यह जानने का प्रयास करें कि वे अपनी संस्कृति और रीति–रिवाजों को कैसे जीवित रखे हुए हैं। इन सबकी सहायता से एक संक्षिप्त फीचर लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.8 विषय का चयन

अब तक आपको यह अंदाजा लग गया होगा कि समुदाय पर फीचर लेखन का क्षेत्र खासा विस्तृत है। एक लेखक अपने अध्ययन, विश्लेषण तथा आसपास के माहौल के सतर्क निरीक्षण से इन्हीं क्षेत्रों में कई नए आयाम तलाश सकता हैं। समुदाय से संबंधित फीचर के लिए विषय चुनने के दौरान हमें कुछ बुनियादी बातों का भी खयाल रखना चाहिए। आगे हम उन्हीं पर विचार करेंगे।

11.8.1 रुचि और विशेषज्ञता

समुदाय से जुड़ा कोई भी विषय चुनते वक्त अपनी रुचि का खास ध्यान रखें। बिना दिलचस्पी के आप किसी भी विषय पर बेहतर काम नहीं कर सकते। समुदाय संबंधी लेखन का क्षेत्र काफी व्यापक है। यह विषय के प्रति खास, श्रम, शोध और विशेषता की मांग भी करता है, लिहाजा आपको अपनी तैयारी करनी चाहिए जिससे आप समुदाय से जुड़े किसी खास क्षेत्र में विशेषज्ञता के जरिए पहचान बना सकें। यह जरूरी है कि आप अपनी दिलचस्पी वाले क्षेत्र के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करें और उससे अपना जीवंत संपर्क बनाएं।

11.8.2 लेखन का उद्देश्य व प्रासंगिकता

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में समुदाय पर फीचर लिखते वक्त हमें लेखन के मकसद का खास खयाल रखना होगा। हमारा उद्देश्य सिर्फ किसी के रहन–सहन, खान–पान या रीति–रिवाजों का ब्योरा प्रस्तुत करना भर नहीं है। यह भी देखना होगा कि उस खास समुदाय के प्रति हम पाठक में क्या नजरिया विकसित कर रहे हैं। हम समुदायों की खूबियों, उनकी समूह भावना, आपसी सहयोग को सामने लाते हैं तो इसे व्यापक सामाजिक चेतना से जोड़ना होगा। अन्य विषयों के मुकाबले यह थोड़ा कठिन अवश्य है, लेकिन हम अपने आलेख को समयानुकूल और प्रासंगिक नहीं बनाएंगे तो फीचर असरदार नहीं बन पाएगा। अपने स्तर पर यह पहले ही तय कर लेना होगा कि फीचर में हम समुदाय विशेष के किस पक्ष को सामने लाना चाहते हैं और उस चयन के पीछे हमारा अपना क्या दृष्टिकोण है। उदाहरण के तौर पर यहां हम जिस फीचर का अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें लेखक अपनी चिंताओं को स्पष्ट तौर पर पाठकों के सामने रख रहा है –

''संस्कृति के नाम पर संपन्न कार्यक्रमों में लोकगीत की अनुपस्थिति पीड़ा देती है। लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक इतिहास और लोक परंपराओं की अनदेखी का परिणाम यह निकला कि इन आयोजनों और प्रदर्शनों पर एकरूपता हावी होती चली गई। हम फर्क नहीं कर सकते कि यह किस अंचल की संस्कृति है। आखिर रुहेलखंड की संस्कृति और लोक परंपराओं को बचाने के लिए हमने क्या किया? मुझे याद है कि 1970 के आस–पास आस्ट्रेलिया के एल. ब्रेनन इस इलाके के इतिहास अनुसंधान के लिए आए थे। उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि इधर के लोग अपनी संस्कृति और इतिहास से कितने बेखबर हैं। क्या कुछ लोग राहुल सांकृत्यायन और देवेंद्र सत्यार्थी की तरह अपने इलाकों में विलुप्त होती लोक परंपरा को बढ़ाने के लिए आगे नहीं बढ़ सकते? यह तभी संभव है। जब हम लोक को प्यार करते हों।''

(आओ, लोक की ओर देखें, सुधीर विद्यार्थी

अमर उजाला, 31 अगस्त 2004)

11.8.3 प्रकाशन की प्रकृति

समुदायों के लिए फीचर लिखने के दौरान हमें प्रकाशन की प्रकृति का भी ध्यान रखना होगा। सभी पत्रिकाओं में समुदायों पर लिखे फीचर को स्थान नहीं मिल सकता। लेकिन कुछ गंभीर किस्म की पत्रिकाओं में इस तरह के लेखन की खासी संभावनाएं होती हैं। अखबारों में छपने वाले फीचर आम तौर पर समुदायों के किसी प्रेरणादायक, अनूठे या उनके संघर्ष को बयान करने वाले पक्ष तक ही सीमित रहते हैं, जबकि पत्रिकाओं में समुदाय के पूरे आचरण और रहन–सहन संबंधी तमाम पहलुओं को समेटा जा सकता है।

11.9 सामग्री का संकलन

फीचर तैयार करने से पहले उससे संबंधित सामग्री का संकलन फीचर लेखन का एक अहम कार्य है। किसी भी विषय पर फीचर तैयार करने से पहले हमें आवश्यक सामग्री एकत्र करनी होती है, जिसमें आम तौर पर विषय से संबंधित आंकड़े, फोटो, लोगों के साक्षात्कार आदि को शामिल किया जाता है। आगे हम इन पर सिलसिलेवार विचार करेंगे।

11.9.1 विषय पर शोध

किसी भी अन्य विषय के मुकाबले समुदाय फीचर लेखन में शोध सबसे ज्यादा आवश्यक है। किसी समुदाय के बारे में बिना पर्याप्त जानकारी के शोध लिखना लगभग असंभव है। आम तौर पर समुदायों पर अच्छा फीचर तैयार करने के लिए दोहरे स्तर पर शोध की जरूरत पड़ती है। सबसे पहले हम जिस समुदाय को अपने लेखन का विषय बनाने जा रहे हैं, उसके बारे में पहले किए जा चुके शोध कार्य और अध्ययन को हमें अवश्य आधार बनाना चाहिए। समुदायों के निर्माण की प्रक्रिया जटिल होती है। यदि हम उन पर हुए अध्ययन की पृष्ठभूमि को साथ लेकर नहीं चलेंगे तो सतही नतीजों तक नहीं पहुंच सकते हैं। इस सबके बावजूद समुदायों से सीधे संपर्क के बिना फीचर तैयार नहीं हो सकता। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम समुदायों के रहन–सहन और तौर–तरीकों का सीधे उनके बीच जाकर अध्ययन करें। यहां हम पवन सक्सेना की एक रिपोर्ट बतौर उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसे 'द स्टेट्समैन एवार्ड फॉर रूरल रिपोर्टिंग' भी मिल चुका है –

''लोग जाति और धर्म के बंधनों की चाहे जितनी बातें करें, कसमें खाएं, सच तो यह है कि गरीब की कोई बिरादरी नहीं होती। यही वजह है कि बरेली के पिछड़े गांवों के गरीब किसान, जाटव बंगाल के चंद्रवंशी, उरांव आदिवासियों की बेटियों से ब्याह कर रहे हैं। रोटी के लिए दूर–दराज की बेटियों से बना यह रिश्ता लखनऊ–दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारे मीरगंज के पास बसे कुछ गांवों में साफ झलकता है। मीरगंज से कुछ पहले बसा है परतापुर बफरी। करीब तीन हजार की आबादी वाले इस गांव में चंद बड़े किसान हैं और तमाम खेतिहर मजदूर, जो हथेली पर रखे गए साठ रुपयों की बदौलत हर दिन अपनी मेहनत बेचते हैं और इनके पीछे इनके घरों को संभालती हैं अनजानी भाषा बोलने वाली तीखे नैन–नक्शों की मालकिन बंगाली बालाएं, जिनको यहां के युवक पांच–पांच हजार रुपये खर्च करके पश्चिम बंगाल के तमाम जिलों से ब्याह लाए हैं।''

(गरीबों की जिंदगी में ताल मिला रही हैं बंगाली बीवियां
पवन सक्सेना, अमर उजाला, 8 जनवरी, 2002)

11.9.2 तथ्यों का संकलन

फीचर लेखन की प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा तथ्यों का संकलन है। तथ्यों की मदद से फीचर की पूरी रूपरेखा और विशिष्टता निर्धारित होती है। समुदाय के लिए लेखन में तथ्यात्मकता का खास महत्व है। इन तथ्यों की मदद से हम अपने फीचर को विश्वसनीय और पाठकों के लिए दिलचस्प बनाते हैं। इसके लिए जरूरी है कि तय किए गए विषय पर शोध और सर्वेक्षण के दौरान एकत्र तथ्यों का विश्लेषण किया जाए। इससे यह अंदाजा हो जाएगा कि कौन सा तथ्य फीचर के लिए आवश्यक है, और कौन सा अनुपयोगी? उपयोगी तथ्यों को आकर्षक और सुनियोजित तरीके से प्रस्तुत करने पर फीचर पठनीय और दिलचस्प बनता है।

11.9.3 साक्षात्कार

समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर में साक्षात्कार का इस्तेमाल अवश्य होना चाहिए। साक्षात्कार की मदद से सामुदायिक जन–जीवन को ज्यादा प्रामाणिक और जीवंत ढंग से प्रस्तुत करने में मदद मिलती है। साथ ही इससे विषय की एकरसता और बोझिलता भी दूर होती है। बहुत से समुदायों के लोग बाहरी समाज से ज्यादा खुलना या उनके साथ घुलना–मिलना पसंद नहीं करते, लिहाजा साक्षात्कार के लिए उन्हें विश्वास में लेना बहुत जरूरी होता है। बातचीत के टुकड़ों को जस का तस प्रस्तुत करने की बजाय उसे फीचर के भाषा और विन्यास का हिस्सा बनाकर प्रस्तुत करना चाहिए। लोगों से बातचीत के वही टुकड़े इस्तेमाल करें जिनकी आपके फीचर के साथ संगत बनती हो। उदाहरण देखें :

''जरूरत पूरा करने के लिए इन्हें जब कभी पैसों की दरकार होती है तो ये गोह और धामिन सांप की खाल बेचते हैं। खालें कितने में बिकती हैं, यह पूछने पर सुंदर बताते हैं, 'गरीबी में चाहे जित्ते में बिक जाएं, रुपया–दू रुपया में। इन्हें नहीं पता कि कौन लोग इसे खरीदते हैं। लेकिन खरीदारों की शक्ल से वे पूरी तरह वाकिफ हैं। जबकि हर खरीदने वाले बाद में इसे हजारों में बेचते हैं। जिले के दस्तावेज में इन्हें बारख पाल जाति के रूप में चिह्नित किया गया है। बाराबंकी के पूर्व जिलाधिकारी बीएल मीणा ने इन्हें चिह्नित करने के लिए एक कमेटी बनाई थी। मीणा चले गए। कमेटी फाइलों में गर्द खा रही है।''

('चकछिन्ने' एक नई सुबह का इंतजार

योगेश मिश्र, आउटलुक,18 अगस्त 2003)

11.9.4 फोटो और अन्य सामग्री

समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर के साथ तस्वीरों का खासा महत्व है। जैसा कि आप जानते हैं, पत्रकारिता के बदले रंग–ढंग में अब प्रस्तुति पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। लिहाजा हम अपने फीचर के साथ आंकड़ों की प्रस्तुति, ग्राफ, चार्ट और फोटो का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। समुदाय पर लिखे गए फीचर के साथ फोटो देने से उसका प्रभाव काफी बढ़ जाता है। लोक–कलाओं, रीति–रिवाजों और रहन–सहन पर आधारित फीचर में तो तस्वीरें लगभग अनिवार्य होती है, क्योंकि तस्वीरों की मदद से समुदायों के रहन–सहन को ज्यादा विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करने में मदद मिलती है। ध्यान रखें कि ऐसी तस्वीरें ही दी जाएं जो विषय के अनुकूल हों।

11.10 सामग्री का संयोजन और संपादन

इस इकाई के अंतिम हिस्से में हम इस बात पर विचार करेंगे कि फीचर लिखते समय हमें किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही जिस विषय या समस्या को हम फीचर के माध्यम से रखना चाहते हैं, उसकी प्रस्तुति को कैसे दिलचस्प बनाएं। यानी फीचर की भाषा किस तरह की हो, शुरुआत, मध्य और अंत कैसा हो। आइये देखें कि फीचर को बेहतर स्वरूप कैसे दिया जा सकता है।

11.10.1 आरंभ

समुदाय पर तैयार किए गए फीचर की शुरूआत दिलचस्प होनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि आम तौर पर समुदाय संबंधी लेखन की प्रकृति ही गंभीर होती है, इसलिए आपका लेखन अतिरिक्त रूप से गंभीरता ओढ़े हुए नहीं दिखना चाहिए। फीचर की शुरूआत हम किसी प्रसंग, जीवंत उदाहरण या साक्षात्कार से कर सकते हैं। यह तरीका पाठकों का ध्यान खींचता है और फिर हम उसे मूल विषय या समस्या की ओर ले जाते हैं। यदि हम आरंभ में ही समस्या पर चर्चा आरंभ कर देंगे तो फीचर सपाट और उबाऊ हो जाएगा। फीचर की शुरूआत का एक उदाहरण देखें –

''शादी–ब्याह के मौके पर नाते–रिश्तेदारों को खिलाने–पिलाने का रिवाज यूं तो देष के हर समाज में हैं, पर राजस्थान के आदिवासी इलाकों में भोज देने पर ही शादी को सामाजिक स्वीकृति मिलती है। भोज देने का खर्च दिनों–दिन बढ़ते जाने और स्थानीय निवासियों की आर्थिक स्थिति में खास बदलाव न होने की वजह से उदयपुर और सिरोही जिले के आदिवासी गांवों में कई दंपत्ति अपनी शादी को सामाजिक स्वीकृति नहीं दिला पाए हैं। ऐसे दंपत्ति अपनी सगाई के बाद शादी किए बगैर 'साथ–साथ' रह रहे हैं और उनके बच्चे भी पैदा हो रहे हैं।''

(कुरीतियों की काट, रोहित परिहार, इंडिया टुडे, 21 जून 2004)

11.10.2 मध्य

फीचर का मध्य भाग सबसे महत्वपूर्ण होता है। इसे पूरे आलेख की रीढ़ भी कह सकते हैं, क्योंकि हम अपनी मूल संकल्पना को यहां स्थापित करते हैं और पाठकों को विषय के विस्तार में ले जाते हैं। दिलचस्प शुरुआत के बावजूद यदि हम मध्य भाग को बेहतर नहीं बना पायें तो पूरे फीचर का संतुलन बिगड़ जाएगा और वह बेजान हो जाएगा। अतः इस हिस्से को तैयार करने में हमें काफी मेहनत करनी चाहिए। आम तौर पर विषय से संबंधित सभी बातों पर विस्तार से चर्चा मध्य भाग में ही होती है। मुख्य विषय पर गंभीरता से चर्चा भी फीचर के इसी हिस्से में होती है। इसके लिए तथ्यों का बेहतर प्रस्तुतिकरण, बातचीत, साक्षात्कार, आंकड़ो आदि का भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए। एक उदाहरण देखें –

''अस्सी के दशक में इंदौर के इंजीनियरिंग कालेज में तीन या चार लड़कियां थीं। आज न सिर्फ यहां लड़कियां साफ्टवेयर इंजीनियर बन रही हैं, बल्कि बिजनेस मैनेजमैंट जैसे कोर्स भी कर रही हैं। वे अपने स्वयं के व्यवसाय और प्रतिष्ठान भी चला रही हैं। सिर्फ इंदौर ही नहीं, देवास, उज्जैन, रतलाम, मंदसौर, बुरहानपुर, विदिशा जैसी जगहों की लड़कियां भी कैरियर में नई राह देख रही हैं और अपने ग्रामीण तथा कस्बई परिवेश से निकलकर उच्च शिक्षा हेतु हॉस्टलों में रह रही हैं। ताज्जुब नहीं कि इनफोसिस व सेज जैसी बड़ी कंपनियों के कैंपस इंटरव्यू जब होते हैं

तो मध्य प्रदेश और मालवा की ये लड़कियां सहर्ष चुनी जाती हैं। मालवा की काली मिट्टी में पली रूपा और शीना जैसी लड़कियां इन कंपनियों के बेंगलूर और हैदराबाद ऑफिस में साफ्टवेयर इंजीनियर हैं।''

(हैं कस्बे की पर छा गई, शैलेश कुमार झा

आउटलुक, 24 नवंबर 2003)

11.10.3 अंत और शीर्षक

फीचर के अंतिम भाग में हम आम तौर पर मूल विषय के प्रति अपने सरोकारों को दोहराते हैं और पाठकों को सजग रहने या उनके प्रति सोचते रहने की प्रेरणा देते हैं। इस क्रम में हम फीचर में कही गई बातों का सारांश भी प्रस्तुत कर सकते हैं। यह अंतिम हिस्सा काफी परिश्रम की मांग करता है। कोशिश करनी चाहिए कि फीचर का अंत चुस्त और मार्मिक हो। यदि अंत में किसी किस्म का बिखराव या अस्पष्टता दिखी तो सारी मेहनत बेकार हो जाएगी। पहले कही बातों का भी पाठक पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और फीचर बेअसर हो जाएगा। इसी तरह से फीचर का शीर्षक देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह मूल विषय को ध्वनित करने के साथ पाठकों को फीचर पढ़ने के लिए आकर्षित कर सकें। बहुत अधिक लंबा या निबंधात्मक रूप शीर्षक फीचर के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है। शीर्षकों को वाक्य अथवा वाक्यांश में प्रस्तुत करें तथा अनावश्यक विस्तार से बचें। मुहावरे और रोचक जुमले शीर्षक को आकर्षक बनाते हैं। शीर्षक का वाक्यांश फीचर के मूल मर्म से मेल खाता अवश्य होना चाहिए। देखें उदाहरण–

''अन्न की जगह चूहा, चौगाड़, लुखरी और बनविलाव खाकर जिंदगी बसर कर रहे इन चकछिन्नों तक अनाज और रोटी आखिर कब पहुंचेगी! इन चकछिन्नों के लिए न तो स्वतंत्रता दिवस का कोई मतलब है और न ही 26 जनवरी का। इनके लिए रोज वही शाम और रोज वही दिन होता है। किसी रात भूखे सोते हैं। तो किसी रात कुछ पेट में होता है। इनकी पीढ़ियां केवल किसी तरह से पेट पालने में गुजर गई। युवा चकछिन्नों में अब इससे इतर कुछ करने की चाहत है। वे ऐसी विषम परिस्थितियों में हंसते हैं, गाते हैं और मस्त रहते हैं और इस उम्मीद में हैं कि 'वह सुबह कभी तो आएगी।''

('चकछिन्ने' एक नई सुबह का इंतजार, योगेश मिश्र

आउटलुक, 18 अगस्त 2003)

11.11 भाषा शैली

समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर की भाषा–शैली पर खास ध्यान देने की जरूरत है। विषय की गंभीर प्रकृति के बावजूद लेखक को यह ध्यान रखना होगा कि बात कहने का तरीका बहुत दुरूह या अस्पष्ट न हो। समुदाय पर लिखे जाने वाले फीचर की भाषा में प्रवाह होना चाहिए, विवरणों की बहुलता होनी चाहिए। इन विवरणों की मदद से समुदाय की जीवंत प्रस्तुति में मदद मिलती है। उदाहरण देखें–

''जंगल और खेतों में कम होते रिश्ते के चलते ही थारुओं को बाहरी दुनिया में आना पड़ा–मजूरी करने। बेहद मेहनती हैं, सो काम कराने वालों को अखरते नहीं। शिक्षा के

विस्तार से समय के स्तर पर भी आगे आए हैं। गांव की प्रधानी से लेकर स्कूल में पढ़ाने तक के काम में साझेदारी ने अशिक्षित समाज की कुछ रूढ़ियों को तोड़ने का काम भी किया। बहराइच के मिहिपुरवा में फकीरपुरी से आते वक्त पड़ोसी गांव के प्रधान मिल गए। रास्ते में सेमल के एक विशाल और एकाकी पेड़ की ओर इशारा करके बताया, पहले डर के मारे रात को कोई इधर से नहीं गुजरता था। कहते हैं, इस पेड़ पर शैतान रहता है। इधर से गुजरने पर सुर्ती मांगता है। न देओ, तो जमीन में गाड़ देता हैं। फिर खुद ही बोले, 'अब हालांकि बहुत लोग इस बात पर यकीन नहीं करते हैं। शैतान है तो भगवान भी तो है। पांच पांडव हैं, राम हैं, कृष्ण हैं, हनुमान हैं, शंकर हैं।''

(संस्कार अपनी जगह मगर फिल्मों का जबरदस्त रंग है।

थारुओं पर, प्रभात, अमर उजाला, 10 मार्च, 1998)

11.12 सारांश

- इस इकाई में हमने देखा कि कैसे सूचना क्रांति के चलते विभिन्न समुदायों और हाशिये पर सिमटे लोगों में जागरूकता आयी है। उनके जीवन संघर्ष और परेशानियों से समाज अवगत हुआ है। विभिन्न सामाजिक आंदोलनों की मदद से समुदायों ने खुद को मुख्यधारा के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। हमने यह भी समझा कि पत्र पत्रिकाओं में समुदाय पर फीचर लेखन की क्या संभावनाएं हैं।
- हमने समुदायों में आए बदलावों की सामाजिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया और समुदाय पर लिखे जा रहे फीचर के विषय क्षेत्र पर भी विस्तार से उदाहरणों के साथ विमर्श किया। यह जानने की कोशिश की कि वे कौन से क्षेत्र हैं जिन्हें ध्यान में रखकर समुदायों पर बेहतर फीचर तैयार हो सकते हैं।
- हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि पत्र–पत्रिकाओं में लेखन को ध्यान में रखते हुए समुदायों के कितने रूपों को समझा जा सकता है। हमने समझा कि आदिवासी समुदायों की जीवन–शैली, लोक कलाएं और कलाकार, समुदायों में बदलाव, सामुदायिक संघर्ष की कथा, समुदायों में पहचान बनाने की जद्दोजहद, आत्मनिर्भरता और सहयोग की अवधारणा को हम किस तरह फीचर का विषय बना सकते हैं। इस इकाई में हमने समुदाय के लिए लिखे जाने वाले फीचर का विषय चुनने से लेकर इन पर लिखे जाने वाले फीचर के उद्देश्य तथा प्रासंगिकता, सामग्री के संकलन की विधि, सामग्री के संयोजन और संपादन के तरीके और भाषा शैली पर विस्तार से विचार किया। हमने समझा कि फीचर का पूरा कलेवर किस तरह से तैयार किया जा सकता हैं, जिससे हमें समुदाय के बारे में फीचर लिखने में आसानी हो सके।

अभ्यास

1) आपको अपने शहर की मलिन बस्तियों में रहने वाली लड़कियों के रहन सहन पर एक फीचर तैयार करना है तो किन बातों का ध्यान रखेंगे? कारण सहित अपनी बात को स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अपने क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी समुदाय पर आपको एक फीचर तैयार करना है। इस सिलसिले में आप किस तरह से सामग्री का संकलन और संयोजन करेंगे? संक्षेप में बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) अपने शहर में ऐसे लोगों की तलाश करें जो किसी समुदाय की बेहतरी के लिए काम कर रहे हों और सामूहिकता की भावना को बल देते हुए लोगों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक कर रहे हों। इनके कामकाज और साक्षात्कार के आधार पर एक फीचर तैयार करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.13 बोध प्रश्नों /अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस इकाई के अध्ययन के बाद स्वयं उत्तर लिखने का प्रयास करें।

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रेमचंद्र गोस्वामी : पत्रकारिता के प्रतिमान : यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर।

प्रवीण दीक्षित : जनमाध्यम और पत्रकारिता : सहयोगी साहित्य संस्थान, कानपुर।

डॉ. बृजभूषण सिंह आदर्श : रूपक लेखक : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

ब्रियन निकोलस : फीचर्स विद फ्लेयर : प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया।

रामचंद्र तिवारी : पत्रकारिता के विविध रूप : आलेख प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. अर्जुन तिवारी : आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY